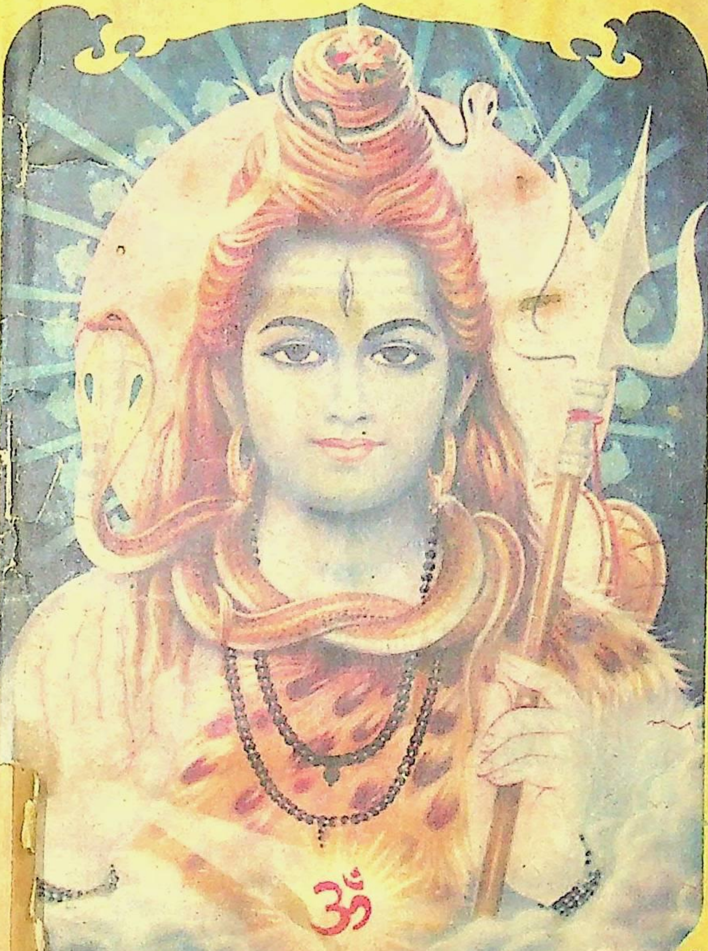
शिव महिम्न स्तोत्रम्

शिव ताण्डव सहितम्



पता– श्री दुर्गा पुस्तक भण्डार,
५२७ ए/२, कक्कड़ नगर, इलाहाबाद। मूल्य रु० २-०

अथ शिवमहिम्नस्तोत्रम्

पुष्पदन्त उवाच

महिम्नः पारन्ते परमविदुषो यद्यसदृशी-
स्तुतिर्ब्रह्मादीनामपि तदवसन्नास्त्वयि गिरः।
अथावाच्यः सर्वः स्वमतिपरिणामावधि गृणन्
ममाप्येष स्तोत्रे हर! निरपवादः परिकरः ॥१॥

हे हर ! (आप सब दुःखों को हरण करते हैं अतः हर हैं) अर्थात् हम संकटग्रस्तों के संकट हटाने में आपको दूसरा व्यापार नहीं करना होगा, आपका नाम ही हर है। हे शम्भो ! आपकी महिमा की अन्तिम सीमा (अर्थात् आप इतने बड़े हैं, यह स्वरूप है, यह महिमा है आदि) को न जाननेवाला जो स्तुति करता है, वह स्तुति यदि उचित (उत्तम) नहीं है तो ब्रह्मा आदि सर्वज्ञों से की गयी स्तुतियाँ भी आपके योग्य नहीं हैं। (क्योंकि आपके परिमाण नहीं हैं अतः वे सर्वज्ञ होते हुए भी आपके ज्ञान में अधूरे ही हैं) इसके बाद बात यह है कि जैसे चिड़ियाँ अथाह आकाश में अपनी शक्ति के अनुसार उड़ती हैं, उसी तरह अपनी बुद्धि के अनुसार कोई भी भक्त आपका स्तुतिगान करता हुआ हास्य का पात्र नहीं हो सकता। क्योंकि

सा वाग्यया तस्य गुणान् गृणीते करौ च तत्कर्मकरौ मनश्च।
जिह्वासती दार्दुरिकेव सूत ! न चोपगायत्युरुगायगाथाः ॥

वही वाणी है, जिससे भगवान् का गुणगान करें। जो हाथ भगवान्

का काम करते हैं तथा जो मन उनका मनन करते हैं वही श्लाघ्य हैं। जिस जीभ ने भगवान् का गुणगान नहीं किया, वह मेढ़क की जीभ के सरीखे हैं। अतः हमारा भी यह आरम्भ इस स्तोत्र में निन्दायोग्य नहीं है ॥ १ ॥

स्तुति के विषय में अपना तथा ब्रह्मा आदि का 'साम्य' युक्ति पूर्वक सिद्ध कर, 'भगवन् ! आप स्तुति से जानने योग्य नहीं हैं' इस अभिप्राय से पुनः स्तुति करते हैं:—

अतीतः पन्थानं तव च महिमा वाङ्मनसयो-
रतद्व्यावृत्त्या यं चकितमभिधत्ते श्रुतिरपि ।
स कस्यस्तोतव्यः कतिविधगुणः कस्य विषयः
पदे त्वर्वाचीनेपतति न मनः कस्य न वचः ॥२॥

'हे हर !' यह सम्बोधन प्रथम श्लोक का यहाँ भी सम्बन्ध रखता है।

हे हर ! आपकी सगुण तथा निर्गुण महिमा वाणी एवं मन का विषय नहीं है। वेद भी कहता है कि मन सहित वाणी आदि सभी उस परमात्मा को न पाकर लौट आते हैं ('यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह') जिस महिमा का वर्णन वेद भी चकित-सा होकर करता है (अतद्व्यावृत्त्या) अर्थात् श्रुति (वेद) सगुण निर्गुण दोनों का वर्णन करते हुए चकित हो जाती है। जैसे सगुण का जगत् से अभेद तथा निर्गुण का स्वप्रकाश वर्णन आदि। अतः ऐसी उस महिमा की स्तुति कौन कर सकता है ? कोई नहीं। क्योंकि सगुण में कितने गुण हैं तथा निर्गुण में कैसे जाने जा सकते हैं यह जानना कठिन है। परन्तु नई भव्य वस्तु के लिए किसका मन तथा वचन नहीं खिंच जाता है। इसलिए आपके महिमास्तोत्र में मैं भी उद्यत हूँ ॥ २ ॥

अब शंका इस बात की होती है कि प्रसन्नता किसी एक अपूर्व वस्तु के प्राप्त होने पर ही होती है। और भगवान् सर्वज्ञ तथा नित्य हैं तो यह स्तुति उनकी अपूर्व वस्तु न होने के कारण निष्फल होगी। इस शंका को दूर करते हुए स्तुति की सफलता बताते हैं :—

मधुस्फीता वाचः परममृतं निर्मितवत-
स्तव ब्रह्मन्किं वागपि सुरगुरोर्विस्मयपदम् ।
मम त्वेतां वाणीं गुणकथनपुण्येन भवतः
पुनामीत्यर्थेऽस्मिन्पुरमथन! बुद्धिर्व्यवसिता॥३॥

हे ब्रह्मन्! हे विभो! बृहस्पति आदि से की गयी स्तुति क्या आपके चमत्कार का कारण हो सकती है? (अर्थात् नहीं) क्योंकि बिना परिश्रम के ही श्रीमान् के निःश्वास द्वारा निकली हुई, एवं सब अलंकारों से युक्त, मधु के समान मधुर तथा उत्तम अमृतसी वह वेदवाणी अत्यन्त स्वादु है। तात्पर्य यह है, कि यदि बृहस्पति आदि की स्तुति में कोई विशेषता नहीं है तो हमारी क्या गणना! परन्तु हे पुरमथन! त्रिपुरासुर के मारनेवाले प्रभो! आपके गुणगान से जो पुण्य होगा उससे मेरी बुद्धि निर्मल होगी। इस अभिप्राय से आपकी स्तुति में मेरी बुद्धि उद्यत हुई है॥ ३॥

तवैश्वर्यं यत्तज्जगदुदयरक्षाप्रलयकृत्
त्रयीवस्तु व्यस्तं तिसृषु गुणभिन्नासु तनुषु ।
अभव्यानामस्मिन्वरद रमणीयामरमणीम्
विहन्तुं व्याक्रोशीं विदधत इहैके जडधियः॥४॥

हे वरद (वाञ्छित वस्तु के देनेवाले)! जगत् की सृष्टि, रक्षा,

प्रलय करनेवाला, तथा तीनों (ऋग, यजु, साम) वेदों से गाया गया एवं तीन (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) रूपों में रहनेवाला जो आपका ऐश्वर्य है उसको नष्ट करने के लिए कुछ मूर्ख व्याक्रोशी (आक्षेप-पूर्वक ऊँचे स्वर से विरुद्ध भाषण) करते हैं, जो कि निन्दा मनोहर नहीं होती हुई भी भाग्यहीनों को मनोहर सी लगती है ॥ ४ ॥

विरोधी दल किन-किन शंकाओं को करता है। उनका उत्तर देते हुए स्तुति करते हैं :--

किमीहः किंकायः स खलु किमुपायस्त्रिभुवनम्
किमाधारो धाता सृजति किमुपादान इति च।
अतर्क्यैश्वर्ये त्वय्यनवसरदुःस्थो हतधियः
कुतर्कोऽयं कांश्चिन्मुखरयति मोहाय जगतः॥५॥

हे वरद ! आप तर्क करने के योग्य नहीं हैं। आपके विषय में संसार को मोह में डालनेवाला कुतर्क बहुत से दुष्टबुद्धियों (मूर्खों) को वाचाल (बहुत बोलनेवाला) बना रहा है। कुतर्क यह है :—कि वह धाता (परमेश्वर) त्रिभुवन की सृष्टि करता है, यह सिद्धान्त है। तो जैसे कुम्हार घड़ा बनाते समय चाक चलाना आदि कई एक व्यापार करता है, वैसे ही ईश्वर भी यदि संसार को बनाता है तो उसकी चेष्टा क्या है ? तथा किस शरीर से, किन साधनों से, कौन-से आधार पर, एवं किस उपादान कारण से रचता है। यदि उसमें ये सभी व्यापार हैं तो वह ईश्वर कैसे ? तथा यदि सभी व्यापार नहीं हैं तो जगत् का बनानेवाला कैसे ? इत्यादि। उ०--जैसे आँख से दूसरी चीज देखी जा सकती है, न कि आँख अपने रूप को देखती है। उसी तरह सब जगत् एवं तर्क के अधिष्ठान आप ही हैं। अतः किसी भी

तर्क से प्रत्यक्ष नहीं किये जा सकते। वेद भी कहता है—(ईश्वरे तर्काप्रतिष्ठानात्) ईश्वर में तर्क नहीं लगता। अतः यह सिद्ध है, कि दुष्ट लोग आप में तर्क करके संसार को मोह में डाल देते हैं ॥५॥

इस प्रकार विरोधी तर्क का खंडन कर उचित तर्क का समर्थन करते हैं :—

अजन्मानोलोकाः किमवयववन्तोऽपि जगता-
मधिष्ठातारं किं भवविधिरनादृत्य भवति।
अनीशो वा कुर्याद् भुवनजनने कः परिकरो
यतो मन्दास्त्वां प्रत्यमरवर! संशेरत इमे ॥६॥

हे अमरवर! (सब देवों में श्रेष्ठ) क्या ये भू (पृथ्वी) आदि लोक अवयव (खंड) वाले होते हुए भी जन्मरहित हैं? अर्थात् नहीं। तथा क्या पृथ्वी आदि की सृष्टिक्रिया बिना किसी अधिष्ठाता (कर्ता) के हो सकती है? अर्थात् नहीं। और ईश्वर से भिन्न यदि कोई पुरुष इसका कर्ता है, तो उसके पास रचना की क्या सामग्री है? क्योंकि जीव तो अपने शरीर की रचनाओं को ही नहीं जानता, चौदहों भुवन का तो दूर है। इस प्रकार आप सब प्रमाण द्वारा सिद्ध हैं। इसलिए वे महान् मूर्ख हैं जो आपके विषय में सन्देह करते हैं ॥६॥

इस प्रकार भगवत्-विमुखों का खण्डन कर सम्पूर्ण शास्त्रों का तात्पर्य साक्षात् या परम्परा से ईश्वर में ही है। ऐसी स्तुति कर रहे हैं :

त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च।

रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषाम्
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ॥७॥

हे असरवर ! जैसे सभी नदियाँ सीधे या एक दूसरी नदी से सम्बन्ध करके समुद्र में ही जाती हैं वैसे ही त्रयी (वेद आदि अठारह विद्या- पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्रांगमिश्रिताः। वेदाःस्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश। ये चौदह, तथा आयुर्वेद धनुर्वेद गांधर्ववेद अर्थशास्त्र ये चार सांख्य, योग, शैवमत, वैष्णवमत आदि अनेक मत तथा आपको प्राप्त करने के अनेक मार्ग हैं। सभी भिन्न-भिन्न मार्ग ग्रहण कर लेते हैं। परन्तु साक्षात् या परम्परया आपको प्राप्त करना ही सबका ध्येय है। जैसे समुद्र में गङ्गा सीधे जाती है, रावती आदि सरयू आदि से मिलकर जाती हैं। वैसे ही वेदान्ती सीधे जाते हैं। कुछ मतवाले परम्परया जाते हैं। परन्तु सबका ध्येय आपका चरण ही है ॥ ७ ॥

उपर्युक्त साधनों से शंकाओं को दूर कर प्रसिद्ध नवीन रूप में वर्तमान शिव की स्तुति करते हैं:—

महोक्षः खट्वाङ्गं परशुरजिनं भस्म फणिनः
कपालं चेतीयत्तव वरद ! तन्त्रोपकरणम् ।
सुरास्तां तामृद्धिं दधति तु भवद्भ्रूप्रणिहितां
नहि स्वात्मारामं विषयमृगतृष्णा भ्रमयति॥८॥

हे वरद (वर देनेवाले) ! यद्यपि आप परिपूर्ण परमेश्वर हैं, तथापि महोक्ष (बूढ़ा बैल), खट्वाङ्ग (खाट का अवयव शस्त्र विशेष), परशु (टङ्क-कुठार), अजिन (चर्म), भस्म, फणि (सर्प), कपाल (अनेक मनुष्यों

की खोपड़ी) ये आपके तन्त्रोपकरण (कुटुम्ब धारण) के साधन हैं। यह संशय करें, कि जो खुद ऐसा दरिद्र है, वह क्या दूसरे को दे सकता है। तो ऐसा नहीं, प्रभो! आपके भ्रू विक्षेप मात्र से दी गयी भिन्न-भिन्न ऋद्धियों को देवता लोग धारण करते हैं। तो यह कहें कि स्वयं उसका उपभोग क्यों नहीं करते? उत्तर-अन्य सभी विषय-वासना मोहित हैं। परन्तु स्व-प्रकाश आनन्दस्वरूप ब्रह्म को विषय का भ्रमजाल नहीं लुभा सकता। अर्थात् आप माया से परे हैं आपको किसी वस्तु की आवश्यकता ही नहीं है॥ ८॥

ध्रुवं कश्चित्सर्वं सकलमपरस्त्वध्रुवमिदं
परो ध्रौव्याध्रौव्ये जगति गदति व्यस्तविषये।
समस्तेऽप्येतस्मिन्पुरमथन! तैर्विस्मित इव
स्तुवञ्जिह्रेमि त्वां न खलु ननु धृष्टा मुखरता॥९॥

हे पुरमथन! (त्रिपुरासुर के नाश करनेवाले) कोई (सांख्यपातञ्जलमतानुयायी (इस जगत् को ध्रुव (नित्य) मानता है कोई, (बौद्ध) अध्रुव (अनित्य), तथा कोई (तार्किक) नित्य अनित्य दोनों मानता है। ऐसी हालत में हे प्रभो! जोकि भिन्न-भिन्न प्रकार से भिन्न-भिन्न रूप जगत् को मानते हुए आपकी स्तुति भी भिन्न-भिन्न किये हैं। उनसे चमत्कार को प्राप्त मैं स्तुति करने में लज्जित नहीं हो रहा हूँ कि लोग कहेंगे कि यह स्तुति करना नहीं जानता किन्तु हमारी वाचालता ही हमें इस स्तुति में निर्लज्ज बना रही है और स्तुति करने को उद्यत कर रही है॥ ९॥

तवैश्वर्यं यत्नाद् यदुपरि विरिञ्चिर्हरिरधः।
परिच्छेत्तुं यातावनलमनलस्कन्धवपुषः।

ततो भक्तिश्रद्धाभरगुरुगृणद्भ्यां गिरिश ! यत्
स्वयं तस्थे ताभ्यां तव किमनुवृत्तिर्नफलति।१०।

हे गिरीश ! हे शम्भो ! आपकी सेवा क्या नहीं दे सकती ? अर्थात् सभी कुछ दे सकती है। आपकी सेवा से आपका साक्षात्कार तक हो सकता है। हे भगवन्, आपकी तेजःपुञ्जमयी मूर्ति के ऐश्वर्य का माप करने के लिए यत्नपूर्वक ऊपर ब्रह्मा, नीचे-विष्णु गये, परन्तु थाह नहीं पाये। हम सरीखे की क्या बात है। बाद में जब भक्ति-श्रद्धा से आपकी स्तुति किये, तो आप स्वयं स्थिर हो गये अर्थात् स्तुति से जब आप प्रसन्न हुए, तब आपका थाह लगा। इससे यह निश्चय प्रतीत होता है, कि आपकी स्तुति अवश्य फलद होती है॥ १०॥

अयत्नादापाद्य त्रिभुवनमवैरव्यतिकरम्
दशास्यो यद्बाहूनभृत रणकण्डूपरवशान्।
शिरः पद्म-श्रेणी-रचित-चरणाम्भोरुह-बलेः
स्थिरायास्त्वद्भक्तेस्त्रिपुरहर ! विस्फूर्जितमिदम्

हे त्रिपुहर ! रावण ने जो आपके चरणकमलों में अपने नौ मस्तक-रूप कमलपुष्प की श्रेणी (पंक्ति) को बलि (उपहार) में चढ़ा दिया था, उसके उसी निश्चल भक्ति का यह प्रभाव है कि तीनों लोक में उसके वैर का कारण भी कोई नहीं रह सका। अर्थात् अपने पराक्रम से इन्द्र, कुबेर आदि को भी ज़ीत लिया था। और रण (युद्ध) के लिए बराबर खुजला जानेवाली २० बीस भुजाओं को धारण किया था। अर्थात् कोई उससे लड़नेवाला नहीं था। अतः उसकी बाहें खाली रहने के कारण खुजलाती-सी रहती थीं। यह सभी आपकी भक्ति का ही फल है॥ ११॥

अमुष्य त्वत्सेवासमधिगतसारं भुजवनम्
बलात्कैलासेऽपि त्वदधिवसतौ विक्रमयतः ।
अलभ्या पातालेऽप्यलसचलितांगुष्ठशिरसि
प्रतिष्ठात्वय्यासीद् ध्रुवमुपचितो मुह्यतिखलः १२

हे त्रिपुरहर ! आपकी सेवा से ही प्राप्त बलवाले, अपनी भुजाओं का आपके निवास स्थान कैलास में बलात्कार से पराक्रम दिखलानेवाले रावण को पाताल में भी शरण नहीं मिली। क्योंकि आपने धीरे से अपने अँगूठे से दबा दिया। अतः वह इतना नीचे जाने लगा कि पाताल में भी शरण नहीं रही। शंका यह होती है कि उन्हीं से बल प्राप्त कर फिर उन्हींके साथ ऐसा क्यों किया ? उ०– दुष्ट मनुष्य कुछ बढ़ जाने पर अपने को तथा अपनी वृद्धि के कारणों को भी नहीं समझ पाता।

यहाँ ऐसी कथा है कि किसी समय रावण अपने बाहु बल के घमंड से कैलास पर्वत को लंका लाने के लिए गया और हिलाना शुरू किया कि श्रीपार्वती ने बताया, तब श्रीशिवजी ने धीरे से अपना अँगूठा दबाया। वह इतना नीचे चला कि पाताल में भी शरण नहीं मिली ॥ १२ ॥

यदृद्धिं सुत्राम्णो वरद ! परमोच्चैरपि सती-
मधश्चक्रे बाणः परिजनविधेयत्रिभुवनः ।
न तच्चित्रं तस्मिन् वरिवसितरि त्वच्चरणयोर्न
कस्याप्युन्नत्यै भवति शिरसस्त्वय्यवनतिः १३

ततो भक्तिश्रद्धाभरगुरुगृणद्भ्यां गिरिश ! यत्
स्वयं तस्थे ताभ्यां तव किमनुवृत्तिर्न फलति ।१०।

हे गिरीश ! हे शम्भो ! आपकी सेवा क्या नहीं दे सकती ? अर्थात् सभी कुछ दे सकती है। आपकी सेवा से आपका साक्षात्कार तक हो सकता है । हे भगवन्, आपकी तेजःपुञ्जमयी मूर्ति के ऐश्वर्य का माप करने के लिए यत्नपूर्वक ऊपर ब्रह्मा, नीचे-विष्णु गये, परन्तु थाह नहीं पाये। हम सरीखे की क्या बात है। बाद में जब भक्ति-श्रद्धा से आपकी स्तुति किये, तो आप स्वयं स्थिर हो गये अर्थात् स्तुति से जब आप प्रसन्न हुए, तब आपका थाह लगा । इससे यह निश्चय प्रतीत होता है, कि आपकी स्तुति अवश्य फलद होती है ॥ १० ॥

अयत्नादापाद्य त्रिभुवनमवैरव्यतिकरम्
दशास्यो यद्बाहूनभृत रणकण्डूपरवशान् ।
शिरः पद्म-श्रेणी-रचित-चरणाम्भोरुह-बलेः
स्थिरायास्त्वद्भक्तेस्त्रिपुरहर ! विस्फूर्जितमिदम्

हे त्रिपुहर ! रावण ने जो आपके चरणकमलों में अपने नौ मस्तक-रूप कमलपुष्प की श्रेणी (पंक्ति) को बलि (उपहार) में चढ़ा दिया था, उसके उसी निश्चल भक्ति का यह प्रभाव है कि तीनों लोक में उसके वैर का कारण भी कोई नहीं रह सका । अर्थात् अपने पराक्रम से इन्द्र, कुबेर आदि को भी जीत लिया था। और रण (युद्ध) के लिए बराबर खुजला जानेवाली २० बीस भुजाओं को धारण किया था। अर्थात् कोई उससे लड़नेवाला नहीं था। अतः उसकी बाहें खाली रहने के कारण खुजलाती-सी रहती थीं। यह सभी आपकी भक्ति का ही फल है ॥ ११ ॥

अमुष्य त्वत्सेवासमधिगतसारं भुजवनम्
बलात्कैलासेऽपि त्वदधिवसतौ विक्रमयतः ।
अलभ्या पातालेऽप्यलसचलितांगुष्ठशिरसि
प्रतिष्ठात्वय्यासीद् ध्रुवमुपचितो मुह्यतिखलः १२

हे त्रिपुरहर ! आपकी सेवा से ही प्राप्त बलवाले, अपनी भुजाओं का आपके निवास स्थान कैलास में बलात्कार से पराक्रम दिखलानेवाले रावण को पाताल में भी शरण नहीं मिली। क्योंकि आपने धीरे से अपने अँगूठे से दबा दिया। अतः वह इतना नीचे जाने लगा कि पाताल में भी शरण नहीं रही। शंका यह होती है कि उन्हीं से बल प्राप्त कर फिर उन्हींके साथ ऐसा क्यों किया ? उ०– दुष्ट मनुष्य कुछ बढ़ जाने पर अपने को तथा अपनी वृद्धि के कारणों को भी नहीं समझ पाता।

यहाँ ऐसी कथा है कि किसी समय रावण अपने बाहु बल के घमंड से कैलास पर्वत को लंका लाने के लिए गया और हिलाना शुरू किया कि श्रीपार्वती ने बताया, तब श्रीशिवजी ने धीरे से अपना अँगूठा दबाया। वह इतना नीचे चला कि पाताल में भी शरण नहीं मिली ॥ १२ ॥

यदृद्धिं सुत्राम्णो वरद ! परमोच्चैरपि सती–
मधश्चक्रे बाणः परिजनविधेयत्रिभुवनः ।
न तच्चित्रं तस्मिन् वरिवसितरि त्वच्चरणयोर्न
कस्याप्युन्नत्यै भवति शिरसस्त्वय्यवनतिः १३

हे वरद ! (वर देनेवाले) सेवक के समान तीनों भुवन हैं जिसके ऐसे बाणासुर ने सुत्रामा (इन्द्र) की बढ़ी-चढ़ी सम्पत्ति को भी नीचा कर दिया। हे प्रभो ! इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। क्योंकि वह आपका प्रधान भक्त था। मैं तो यह कहता हूँ कि आपके चरणों में किया हुआ नमस्कार किसकी उन्नति के लिए नहीं होता। अर्थात सभी की उन्नति का कारण होता है ॥ १३ ॥

अकाण्डब्रह्माण्डक्षयचकितदेवासुरकृपा-
विधेयस्याऽऽसीद्यस्त्रिनयन विषं संहृतवतः ।
स कल्माषः कण्ठे तव न कुरुते न श्रियमहो
विकारोऽपिश्लाघ्यो भुवनभयभंगव्यसनिनः १४

हे त्रिनयन ! (तीन नेत्रवाले) समुद्र-मथन से निकले कालकूट नामक महाविष का संहार (पान) करनेवाला कोई नहीं था क्योंकि ब्रह्मा, विष्णु आदि सभी डरते थे। परन्तु सम्पूर्ण ब्रह्मांड के नाश की आशंका से चकित इन्द्र, कुबेर आदि देवगण तथा सभी राक्षस-गण पर तथा समस्त ब्रह्मांड पर कृपा कर जो आपने उस महाविष का पान किया है, उससे गले में जो कल्माष (कालापन) हो गया है वह क्या आपकी शोभा को नहीं बढ़ाता है ? किन्तु बढ़ाता ही है। हे भगवन् ! संसार के भय को दूर करने का जिसका व्यसन है उसके यहाँ विकार भी प्रशंसा के योग्य हो जाता है ॥ १४ ॥

असिद्धार्था नैव क्वचिदपि सदेवासुरनरे
निवर्त्तन्ते नित्यं जगति जयिनो यस्यविशिखाः ।

स पश्यन्नीश त्वामितरसुरसाधारणमभूत्
स्मरः स्मर्तव्यात्मा नहि वशिषु पथ्यः परिभवः १५

हे ईश ! (हे सर्वसमर्थ !) जिस कामदेव के बाणों ने देवता, असुर, मनुष्य आदि जितने जगत में हैं—सबको जीत लिया, कहीं भी निष्फल नहीं हुए, ऐसा अस्त्रवाला कामदेव घमण्ड के मारे अन्धा होकर आपको भी अन्य देवताओं के सरीखे समझकर गया। परन्तु फल क्या हुआ कि वह स्मरण करने योग्य हो गया (अर्थात् आपने उसे भस्म करके नाममात्र ही शेष कर दिया) क्योंकि जितेन्द्रियों का अनादर कभी भी कल्याणकारी नहीं होता, तो आप तो सर्वशक्तिमान हैं, और जो सबसे बड़े घमण्डी तथा दुष्ट होते हैं उनको आप ही दुरुस्त करते हैं ॥ १५ ॥

मही पादाघाताद् व्रजति सहसा संशयपदं
पदं विष्णोर्भ्राम्यद्भुजपरिघरुग्णग्रहगणम् ।
मुहुर्द्यौर्दौस्थ्यं यात्यनिभृतजटाताडिततटा
जगद्रक्षायै त्वं नटसि ननु वामैव विभुता ॥ १६ ॥

हे ईश ! आप यद्यपि जगत् की रक्षा के लिए नाचते हैं, तथापि नृत्यकाल में पृथ्वी संकट में पड़ जाती है, कि कहीं नीचे न चली जाऊँ। आपकी घूमती हुई मुद्गर सरीखी भुजाओं की चोटों से तारागण पीड़ित हो जाते हैं तथा खुली हुई जटाओं से बराबर पीटा गया स्वर्गलोक का तट-प्रदेश दुर्दशा में पड़ जाता है।

शंकाः—श्री महादेवजी ऐसा हानिकर कार्य क्यों करते हैं ?

उ०-अहो ! (प्रभुता वामैव) उलटी ही होती है। अर्थात् सम्पत्ति शाली एक साधारण मनुष्य से भी कुछ अच्छा कार्य करते हुए कुछ उपद्रव हो ही जाता है। तो यदि संसार के रक्षार्थ नाच करते समय आपसे कुछ हो जाता है, तो क्या हुआ ?

ऐसी कथा है कि किसी राक्षस ने महादेवजी को प्रसन्न करके यह वरदान प्राप्त किया था कि शाम को हमें अथाह बल हो जाय तो जब वह अपने बल से मतवाला होकर संसार के नाश के लिए तैयार होता है, तब श्री शंकरजी अपने नाच में उसे फँसा देते हैं ॥ १६ ॥

वियद्व्यापी तारागणगुणितफेनोद्गमरुचिः
प्रवाहो वारां यः पृषतलघुदृष्टः शिरसि ते ।
जगद्द्वीपाकारं जलधिवलयं तेन कृतमि-
त्यनेनैवोन्नेयं धृतमहिम दिव्यं तव वपुः ॥१७॥

ईश ! आकाश में व्याप्त तथा तारागणों की चमक से चमकता हुआ फेनवाला महान् वह आकाशगंगा का प्रवाह आपके शिर में छोटी-सी बूँद जैसा दिखाई पड़ रहा है। जिस प्रवाह ने ही इस जगत् के सातों समुद्रों को भरा है, जिससे यह पृथ्वी समुद्र की परिधिवाली कही जाती है, अर्थात् जिससे सात समुद्र भरे गये ऐसी आकाशगंगा (भागीरथी, भोगवती नाम की) आपकी जटा में ऐसी सिमिट गयी, कि एक छोटी-सी बूँद जैसी बन गयी। इसीसे आपकी दिव्य मूर्ति का महत्त्व सिद्ध हो रहा है। अधिक कहना क्या है ॥१७॥

रथः क्षोणी यन्ता शतधृतिरगेन्द्रो धनुरथो
रथांगे चन्द्रार्कौ रथचरणपाणिः शर इति ।

दिधक्षोस्ते कोऽयं त्रिपुरतृणमाडम्बरविधि-
विधेयैःक्रीडन्त्यो न खलुपरतन्त्राःप्रभुधियः १८

हे ईश ! आपके सामने तृण के समान जो त्रिपुरासुर था उसके जलाने के लिए आपने यह क्या आडम्बर रचा । पृथ्वी को रथ बनाया, ब्रह्मा को सारथि, पर्वतराज मेरु को धनुष, तथा सूर्य-चन्द्रमा को चक्र, तथा श्रीविष्णु भगवान् को बाण बनाया । आपने यह बड़ा ही आडम्बर किया । क्योंकि कोई साधारण जन भी किसी तृण के लिए कुठार नहीं उठाता, आप तो सर्वशक्तिमान् हैं । अथवा हे प्रभो ! सही है पूर्णशक्तिशाली लोग अपने वशवर्त्तियों के साथ क्रीडापूर्वक कुछ करते हुए, परतन्त्र नहीं कहे जाते ॥१८॥

हरिस्ते साहस्रं कमलबलिमाधाय पदयो-
र्यदेकोने तस्मिन्निजमुदहरन्नेत्रकमलम् ।
गतो भक्त्युद्रेकः परिणतिमसौ चक्रवपुषा
त्रयाणां रक्षायै त्रिपुरहर ! जागर्ति जगताम्॥१९।

हे त्रिपुरहर ! श्रीविष्णु भगवान् ने आपके चरणों में एक हजार कमलों की भेंट चढ़ाते समय एक कमल के कम हो जाने पर (जिसको आपने परीक्षा के लिए छिपा रक्खा था) नियम भङ्ग के डर से अपने नेत्ररूपी कमल को ही उखाड़कर भेंट कर दिया ! हे प्रभो ! इसी उत्कट भक्ति का फल सुदर्शन चक्र है जो कि सारे जगत की रक्षा के लिए सदा सावधान (गर्जता) रहता है ॥ १९ ॥

क्रतौ सुप्ते जाग्रत्त्वमसि फलयोगे क्रतुमत
क्व कर्म प्रध्वस्तं फलति पुरुषाराधनमृते
अतस्त्वां सम्प्रेक्ष्य क्रतुषु फलदानप्रतिभुव
श्रुतौ श्रद्धां बद्ध्वा दृढपरिकरः कर्मसु जनः ।२०

हे भगवान् ! जैसे लोक में कोई किसीको कर्ज देता है तो ए
ऐसा भी साक्षी बनता है कि कर्जदार के मर जाने आदि किस
कारण पर वही देता है। ऐसे ही हे नाथ ! यज्ञ करनेवाले लोग
यज्ञों के फल देने में प्रतिभू (साक्षी) आपको देखकर तथा श्रुति
(वेदों) में श्रद्धा कर कर्मों में कमर बाँधकर तैयार रहते हैं। कारण
यह है कि यज्ञादि कर्मकलापों के नष्ट हो जाने पर भी आप फलदात
बराबर जागते ही रहते हैं। यदि यह कहें कि कर्म फल देता ही है, तो
प्रभो ! भला नष्ट हुआ कर्म चैतन्य पुरुष की आराधना के बिना कह
फलता है ? अर्थात् नहीं फलता है, इससे यह सिद्ध हुआ कि आप ह
सभी कर्मों के फल दाता हैं ॥ २० ॥

क्रियादक्षो दक्षः क्रतुपतिरधीशस्तनुभृता-
मृषीणामार्त्विज्यं शरणद ! सदस्याः सुरगणाः
क्रतुभ्रंशस्त्वत्तः क्रतुफलविधानव्यसनिनो
ध्रुवं कर्तुः श्रद्धाविधुरमभिचाराय हि मखाः ।२१

हे शरणद ! (शरण देनेवाले !) जिस यज्ञ में कर्मकाण्ड-कुशल
तथा प्रजापति होने से तथा सम्पूर्ण देहधारियों का स्वामी राजा द

प्रजापति जैसा यजमान था तथा त्रिकालदर्शी भृगु आदि महर्षिगण ऋत्विज थे एवं ब्रह्मा आदि देवगण जहाँ सदस्य थे, ऐसे सर्वसम्पन्न यज्ञ का भी आपकी अप्रसन्नता के कारण नाश हो गया। आप यद्यपि यज्ञों के स्वर्ग आदि फल देने के व्यसनी हैं, परन्तु अवज्ञा से उन्होंने अपने यज्ञ के नाश का कारण बना दिया। हे प्रभो! यह निश्चय है कि यज्ञ के फल देनेवाले आप में श्रद्धा का न होना यजमान के नाश का कारण हो जाता है ॥ २१ ॥

प्रजानाथं नाथ! प्रसभमभिकं स्वां दुहितरं
गतं रोहिद्भूतां रिरमयिषुमृष्यस्य वपुषा।
धनुष्पाणेर्यातं दिवमपि सपत्राकृतममुं
त्रसन्तंतेऽद्यापि त्यजति न मृगव्याधरभसः २२

हे नाथ! कामुक पिता के व्यभिचार की प्रवृत्ति देखकर धर्म के भय से हरिणीरूप धारण की हुई अपनी पुत्री से व्यभिचार की इच्छा से मृगरूप धारण किये ब्रह्मा के पीछे-पीछे आज भी आपका व्याधरूपी बाण उनके डर जाने पर भी आकाश में भी उसका पीछा नहीं छोड़ता। अर्थात मृगशिरा नक्षत्र के नाम से ब्रह्मा तथा आर्द्रा नक्षत्र के रूप से उनके पीछे रहनेवाला आपका बाण आज भी आकाश में दिखाई पड़ रहा है।

ऐसी पुराण की कथा है कि अत्यन्त सुन्दरी अपनी कन्या शतरूपा के साथ ब्रह्मा ने बलात्कार, व्यभिचार करना चाहा-तब कन्या डरकर मृगी बन गयी। तब वे मृग रूप धारणकर व्यभिचार करना चाहे उस समय न्यायकर्ता शिवजी का बाण व्याध के रूप से उनके पीछे पड़ा, जो कि आज भी मृगशिरा-आर्द्रा नक्षत्र के रूप में दोनों वर्तमान हैं ॥ २२ ॥

स्वलावण्याशंसा धृतधनुषमन्हाय तृणवत्
पुरः प्लुष्टं दृष्ट्वा पुरमथन ! पुष्पायुधमपि ।
यदि स्त्रैणंदेवी यमनिरतदेहार्धघटना–
दवैतित्वामद्धा बत वरद ! मुग्धा युवतयः ॥२३॥

हे पुरमथन ! हे यमनिरत ! (यम, नियम, आसन, आदि अष्टाङ्गयोग परायण !) पार्वती के शरीर-सौन्दर्य से परम योगी आपको वश करने की आशा से जिस कामदेव ने बाण उठाया था उस धनुषधारी को तृणके समान जलते हुए देखकर भी पार्वती आधे देह में धारण करने के कारण सब योगियो में श्रेष्ठ आपको स्त्रैण (स्त्री में आसक्त) मानती हैं । अर्थात् सोचती हैं कि यदि शिवजी हमारे में आसक्त न होते तो हमें अपने आधे अङ्ग में नहीं रखते । हे वरद ! (वरों के देनेवाले !) सही है, युवतियाँ स्वभाव से ही मुग्धा (भोली-भाली) होती हैं तथा स्त्रियों का भोलापन एक भूषण है । परन्तु आप तो परम योगी संसार से अलग हैं ॥ २३ ॥

श्मशानेष्वाक्रीडा स्मरहर ! पिशाचाःसहचरा-
श्चिताभस्मालेपःस्रगपि नृकरोटी परिकरः ।
अमङ्गल्यं शीलं तव भवतु नामैवमखिलं
तथापि स्मर्तृणां वरद ! परमं मङ्गलमसि ॥२४॥

हे स्मरहर ! (हे कामदेव के नाश करनेवाले !) श्मशानों में क्रीड़ा करना, भूत-प्रेत-पिशाचों को साथ में रखना, चिता का भस्म शरीर में लेप करना, मनुष्यों के शिर की हजारों हड्डियों की माला पहिनना आदि अमङ्गल चरित्र आपमें हैं, वे आपके पास रहें सही । किन्तु हे वरद !

स्मरण करनेवालों के लिए वही आपका स्वरूप परम मङ्गल का देनेवाला है । अतः आप मङ्गल की कामनावालों से सदा याद करने लायक हैं ॥२४ ॥

मनः प्रत्यक्चित्ते सविधमभिधायात्तमरुतः
प्रहृष्यद्रोमाणः प्रमदसलिलोत्सङ्गितदृशः ।
यदालोक्याह्लादं ह्रद इव निमज्ज्यामृतमये-
दधत्यन्तस्तत्त्वंकिमपियमिनस्तत्किलभवान् २५

हे वरद ! मन को बाहरी व्यापारों से रोककर अन्तर्मुख वृत्ति बना-कर विधिपूर्वक वायु को ग्रहण करनेवाले अर्थात् प्राणायाम में लगे हुए, तथा ध्यान से पूर्ण रोम-रोम पुलकित है जिनका, एवं हर्ष के आँसुओं से भरे नेत्रवाले अष्टाङ्गयोग युक्त योगी को अमृतमय तालाब में डुबकी लगाने से जो आनन्द होता है वैसा ही आनन्द अनुभव कर सत्, चित्; आनन्द स्वरूप मन एवं वाणी से परे जिस-जिस किसी तत्त्व (अर्थात् जिसका यह नहीं कहा जा सकता कि यह रूप है—यह है) को अपने में धारण करते हैं, वह हे प्रभो ! आप ही हैं—जिसका वे ध्यान कर परमानन्द को प्राप्त करते हैं ॥ २५ ॥

त्वमर्कस्त्वं सोमस्त्वमसि पवनस्त्वं हुतवह-
स्त्वमापस्त्वं व्योमत्वमु धरणिरात्मात्वमितिच।
परिच्छिन्नामेवं त्वयि परिणता बिभ्रति गिरम्
न विद्मस्तत्तत्त्वंवयमिह तु यत्त्वंनभवसि॥२६॥

हे प्रभो ! तूँ सूर्य हो, तूँ चन्द्र हो, तूँ वायु हो, तूँ अग्नि हो, तूँ जल हो, तूँ आकाश हो, तूँ ही पृथ्वी हो, एवं क्षेत्रज्ञ आत्मा भी तूँ ही हो, ऐसा जैसा कि शास्त्रों में आपकी मूर्तियाँ बतायी गई हैं ऐसा ही परिणतबुद्धि (पके हुए बुद्धि) वाले माप करके आपको मानते हैं। परन्तु हे भगवन् ! मैं नहीं समझता कि इस संसार में कौन ऐसा पदार्थ है जो आप नहीं हैं। अर्थात् सभी पदार्थ आप ही का स्वरूप है आपसे भिन्न कुछ नहीं ॥ २६ ॥

त्रयीं तिस्रो वृत्तीस्त्रिभुवनमथो त्रीनपि सुरा-
नकाराद्यैर्वर्णैस्त्रिभिरभिदधत्तीर्णविकृति ।
तुरीयं ते धाम ध्वनिभिरवरुन्धानमणुभिः समस्त-
व्यस्तं त्वां शरणद ! गृणात्योमिति पदम् ॥ २७ ॥

हे शरणद ! (दुःखियों को अभयदान देनेवाले !) ॐ यह पद तीनों वेदों तथा तीनों (उदात्त, अनुदात्त, स्वरित अथवा जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति) वृत्तियों एवं तीनों (भूः भुवः स्वः) लोकों और तीनो देवताओं को अपने स्वरूप में धारण करता हुआ समस्त (समास अर्थात् अ उ म् का कर्मधारयसमास) के रूप से तथा व्यस्त (अलग अलग अकार, उकार, मकार) के रूप से अर्थात् ऋग्वेद, जाग्रदवस्था, भूलोक एवं ब्रह्मा ये अकार के अर्थ हैं। यजुर्वेद स्वप्नावस्था, भुवर्लोक तथा विष्णु ये उकार के अर्थ हैं। सामवेद सुषुप्ति अवस्था, स्वर्गलोक हर, ये मकार के अर्थ हैं। यह उपनिषदों में बताया गया है। ऐसा ॐ पद समस्तरूप (अर्थात् एक रूप) तथा व्यस्त रूप (अर्थात् अनेक रूपवाले) विकाररहित आपके तुरीय (चतुर्थ) अखण्ड चैतन्य रूप को सदा गाता है ॥ २७ ॥

भवश्शर्वो रुद्रः पशुपतिरथोग्रः सहमहां-
स्तथा भीमेशानाविति यदभिधानाष्टकमिदम्।
अमुष्मिन्प्रत्येकं प्रविचरति देव श्रुतिरपि
प्रियायास्मैधाम्नेप्रणिहितनमस्योऽस्मिभवते२८

हे शरणद! हे देव! भव, शर्व, रुद्र, पशुपति, उग्र, (महता सह वर्तते सहमहान्) महादेव और भीम, ईशान आदि आपका जो नामाष्टक है, इसके प्रतिनामों के गुणगान में देवगण तथा श्रुतियाँ (वेद) अपि शब्द से शास्त्र पुराणादि सभी पूर्णरूप से लगे रहते हैं। हे भगवन्! ऐसे प्रभु के योग्य पूजन में अपने को असमर्थ समझ कर मैं उस तेज का मन वाणी एवं शरीर से केवल नमस्कार ही कर रहा हूँ॥ २८॥

नमो नेदिष्ठाय प्रियदव! दविष्ठाय च नमो
नमः क्षोदिष्ठाय स्मरहर! महिष्ठाय च नमः।
नमो वर्षिष्ठाय त्रिनयन! यविष्ठाय च नमो
नमः सर्वस्मै ते तदिदमिति शर्वाय च नमः॥२९॥

हे प्रियदव! (निर्जन-वन-विहार-प्रेमी!) अत्यन्त निकटवर्ती एवं अत्यन्त दूरवर्ती आपके लिए बार-बार नमस्कार है। हे स्मरहर! (कामदेव के नाश करनेवाले!) अत्यन्त लघु तथा परम महान् आपको बार-बार नमस्कार है। हे त्रिनयन! (तीन नेत्रवाले!) अति वृद्ध एवं अति युवा आपको बार-बार नमस्कार है तथा हे भगवन्! यह जगत् है जिसका, जगत् रूप है जो, ऐसे प्रभु को बार-बार नमस्कार है॥ २९॥

बहलरजसे विश्वोत्पत्तौ भवाय नमो नमः
प्रबलतमसे तत्संहारे हराय नमो नमः
जनसुखकृते सत्त्वोद्रिक्तौ मृडाय नमो नमः
प्रमहसि पदे निस्त्रैगुण्ये शिवाय नमो नमः॥३०॥

हे भगवन्! संसार की सृष्टि के लिए रजोगुण प्रधान ब्रह्मा की मूर्ति धारण करनेवाले आपके लिए बार-बार नमस्कार है। जीव मात्र के सुख के लिए सत्वगुण प्रधान विष्णु रूपधारी आपको नमस्कार है। सबके नाश की इच्छा से तमोगुण प्रधान हर-रूप धारण करने वाले आपको बार-बार नमस्कार है। एवं माया से परे तथा तीनों गुणों से रहित आपको बार-बार नमस्कार है। अर्थात् निर्गुण होते हुए भी आवश्यकता पर सगुणरूप धारण करनेवाले आपके लिए बार-बार नमस्कार है॥ ३०॥

कृशपरिणति चेतः क्लेशवश्यं क्व चेदम्
क्व च तव गुणसीमोल्लङ्घिनी शश्वदृद्धिः।
इति चकितममन्दीकृत्य मां भक्तिराधाद्
वरद! चरणयोस्ते वाक्यपुष्पोपहारम्॥३१॥

हे वरद! दुर्बल परिणामवाला एवं अत्यन्त क्लेश के वश में रहनेवाला कहाँ हमारा क्षुद्र चित्त, कहाँ आपकी बढ़ी-चढ़ी हरएक गुणों की सीमाओं को लाँघनेवाली ऋद्धियाँ, तो भला स्तुति कैसे करूँ? ऐसे चकित (मन्द) मुझको मेरी भक्ति चमत्कार युक्त बनाकर आपके चरणों में यह वाक्यरूपी फूलों की माला सेवा में सादर

अर्पित कराई है। अर्थात् हे प्रभो! पूर्वोक्त स्तुति मेरे सामर्थ्य से बाहर रही, परन्तु आपके विषय में जो मेरी भक्ति है उसने दृढ़ बनाकर यह स्तुति करायी है। जैसे 'पुष्प' रस लेनेवाले भौंरे तथा पथिक को अपने गन्ध से सुखी करता है, उसी तरह यह 'स्तुति' भक्त रसिकों को तथा सुननेवाले को यथायोग्य सुख देती हैं॥ ३१॥

असितगिरिसमं स्यात् कज्जलं सिन्धुपात्रे
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं
तदपि तव गुणानामीश! पारं न याति॥३२॥

हे ईश! (सर्वसमर्थ!) समुद्र रूपी पात्र (दावात) में काले पर्वत के समान कज्जल (स्याही) हो, और सुरतरुवर (कल्पवृक्ष) की शाखा की लेखनी (कलम) हो, तथा सम्पूर्ण पृथ्वी पत्र (कागज) हो, इन सबको लेकर साक्षात् सरस्वती भी निरन्तर लिखा करें तब भी हे प्रभो! आपके गुणों का पार नहीं पा सकती। तो हम सरीखे क्षुद्रजन की क्या बात है। (अर्थात् आप अपरिमितगुणवाले हैं)॥ ३२॥

असुर-सुर-मुनीन्द्रैरर्चितस्येन्दुमौले-
र्ग्रथितगुणमहिम्नो निर्गुणस्येश्वरस्य
सकलगुणवरिष्ठः पुष्पदन्ताभिधानो
रुचिरमलघुवृत्तैः स्तोत्रमेतच्चकार॥ ३३॥

राक्षस, देवता एवं मुनीन्द्रों से पूजित तथा ललाट में हैं चन्द्रमा जिनके ऐसे तथा जिनके गुणों की महिमा यहाँ एक माला के रूप में

गूँथी गई है, ऐसे निर्गुण ईश्वर के इस सुन्दर स्तोत्र को पुष्पदन्त नामक यक्षराज ने अलघुवृत्तैः (बहुत बड़े परिश्रम से अथवा शिखरिणी आदि छन्दों से) बनाया ॥ ३३ ॥

अहरहरनवेद्यं धूर्जटेः स्तोत्रमेतत्
पठति परमभक्त्या शुद्धचित्तः पुमान्यः ।
स भवति शिवलोके रुद्रतुल्यस्तथाऽत्र
प्रचुरतरधनायुः पुत्रवान्कीर्तिमांश्च ॥३४॥

जो शुद्ध हृदयवाला पुरुष परम भक्तिपूर्वक धूर्जटि (महादेव) के इस पवित्र स्तोत्र का प्रतिदिन पाठ करता है वह शिवलोक में रुद्रों के समान होता है, अर्थात् उसकी पूजा होती है, और इस लोक में अत्यन्त धन, आयु, पुत्र एवं यश आदि को प्राप्त करता है। अर्थात् दोनों लोक उसके बन जाते हैं ॥ ३४ ॥

महेशान्नापरो देवो महिम्नो नापरा स्तुतिः ।
अघोरान्नापरो मंत्रो नास्ति तत्त्वं गुरोः परम् ३५

श्री महादेवजी से बढ़कर कोई देवता नहीं है। महिम्नस्तोत्र से बढ़कर कोई स्तोत्र नहीं है। अघोर मन्त्र से बढ़कर कोई मन्त्र नहीं है। अघोर मन्त्र वैदिक मन्त्र है। गुरु से बढ़कर कोई तत्व नहीं है ॥३५॥

दीक्षा दानंतपस्तीर्थंज्ञानं यागादिकाः क्रियाः ।
महिम्नस्तवपाठस्यकलां नार्हन्ति षोडशीम् ३६

दीक्षा (ज्ञान के लिए गुरु से मन्त्र लेना), दान, तप, तीर्थ, ज्ञान

और यज्ञ करना आदि क्रियायें महिम्नस्तोत्र के पाठ की सोलहवीं कला के समान भी नहीं है ॥ ३६ ॥

कुसुमदशननामा सर्वगन्धर्वराजः
शशिधरवरमौलेर्देवदेवस्य दासः ।
स खलु निजमहिम्नो भ्रष्ट एवास्य रोषात्
स्तवनमिदमकार्षीद्दिव्यदिव्यं महिम्नः ॥३७॥

कुसुमदशन (पुष्पदन्त) नामक सब गन्धर्वों के राजा, बाल चन्द्रमा को ललाट में धारण करनेवाले देवों के देव (महादेव) के भक्त थे। वह इन्हीं महादेवजी के कारण अपने महत्व से गिर गये। पुनः उद्धार के लिए शंकरजी की महिमा का परमदिव्य स्तोत्र बनाया ॥ ३७ ॥

आसमाप्तमिदं स्तोत्रं पुण्यं गन्धर्व भाषितम् ।
अनौपम्यं मनोहारि शिवमीश्वरवर्णनम् ॥३८॥

अनुपम (अर्थात् जिसके उपमा की कोई वस्तु है ही नहीं) ऐसा एवं मन को हरनेवाला परम मधुर शिव (कल्याण) स्वरूप. यह समाप्तिपर्यन्त ईश्वरवर्णनात्मक पवित्र स्तोत्र गन्धर्वराज से कहा गया ॥ ३८ ॥

सुरवरमुनिपूज्यं स्वर्गमोक्षैकहेतुम्
पठति यदि मनुष्यः प्राञ्जलिर्नान्यचेताः ।
व्रजति शिवसमीपं किन्नरैः स्तूयमानः
स्तवनमिदममोघं पुष्पदन्तप्रणीतम् ॥३९॥

पुष्पदन्त का बनाया हुआ अमोघ (व्यर्थ नहीं होनेवाला) बड़े-बड़े देवताओं और मुनियों से पूज्य और स्वर्ग (सुख) तथा मोक्ष (आवागमन से छुटकारा) को देने का कारण जो यह स्तोत्र है इसको मनुष्य एकाग्रचित्त हो एवं हाथ जोड़कर यदि पढ़े तो मार्ग में किन्नरगण द्वारा स्तुति (प्रशंसा) प्राप्त करता हुआ श्रीशिवजी के पास पहुँच जाता है ॥ ३९ ॥

श्री पुष्पदन्तमुखपङ्कजनिर्गतेन
स्तोत्रेण किल्बिषहरेण हरप्रियेण ।
कण्ठस्थितेन पठितेन समाहितेन
सुप्रीणितो भवति भूतपतिर्महेशः ॥ ४० ॥

श्री पुष्पदन्त के मुख-कमल से निकले हुए सब पापों के दूर करनेवाले श्री शिव के प्रिय स्तोत्र के कण्ठस्थपाठ तथा एकाग्रचित्त के पाठ से भूतों के नाथ श्रीमहेशजी अत्यन्त प्रसन्न होते हैं (अर्थात् यह स्तोत्र कण्ठ करने से श्री शिवजी बहुत प्रसन्न होते हैं) ॥ ४० ॥

इत्येषा वाङ्मयी पूजा श्रीमच्छङ्करपादयोः ।
अर्पिता तेन मे देवः प्रीयताश्च सदाशिवः ॥ ४१ ॥

यह वाणीरूपी पूजा श्री शंकर भगवान् के चरण में सादर समर्पित है। इससे श्री सदाशिव (कल्याणस्वरूप) देवों के ईश मुझ पर प्रसन्न होवें ॥ ४१ ॥

तव तत्त्वं न जानामि कीदृशोऽसि महेश्वर !
यादृशोऽसि महादेव तादृशाय नमो नमः ॥ ४२ ॥

हे महेश्वर ! आप कैसे हैं ? क्या रूप है ? कितने गुण हैं इत्यादि मैं नहीं जानता। आप जैसे हैं वैसे ही के लिए नमस्कार है ॥ ४२ ॥

एककालं द्विकालं वा त्रिकालं यः पठेन्नरः !
सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते ॥४३॥

एक काल (प्रातः) अथवा दो काल (प्रातः दोपहर) अथवा तीन काल (प्रातः दोपहर शाम) कभी भी इस स्तोत्र को जो पढ़ता है वह सब पापों से छुटकारा पाकर श्री शिवजी के लोक में पूजा प्राप्त करता है ॥ ४३ ॥ श्री शिवार्पणमस्तु ॥

—:o:—

रावण कृतं

॥ शिवताण्डव स्तोत्रम् ॥

जटाकटाहसंभ्रमभ्रमन्निलिंपनिर्झरी
विलोलवीचिवल्लरी विराजमानमूर्धनि ।
धगद्धगद्धगज्ज्वलल्ललाटपट्टपावके,
किशोरचन्द्रशेखरे रतिःप्रतिक्षणं मम॥१॥

ताण्डव नृत्य के समय जटारूपी कूप में वेग से भ्रमण करती हुई सुरसरि की लोल लहर रूपी लताओं से सुशोभित और धक्-धक् की ध्वनि से युक्त जलने वाली है अग्नि जिसमें ऐसे ललाट वाले तथा द्वितीया के चन्द्र को आभूषण के समान धारण करने वाले श्रीमहादेव जी के प्रति मेरी क्षण प्रति क्षण प्रीति होवे ॥१॥

जटाटवीगलज्ज्वलप्रवाहपावितस्थले,
गलेऽवलम्ब्यलम्बितां भुजङ्गतुङ्गमालिकाम् ।
डमड्डमड्डमन्निनादवड्डमर्वयं,
चकारचंडतांडव तनोतु नः शिवः शिवम् ।२।

लंकेश रावण मनोभिलषित अर्थं की सिद्धि के लिये शिव जी से प्रार्थना करता है कि जो श्री महादेवजी जटा रूपी वन से गिरते हुये पवित्र जल के वेग से पवित्र कंठ में विशाल सर्पों की माला को धारण कर डमडम का रव उत्पन्न करने वाले डमरू को बजाते हुये ताण्डव नृत्य करते हैं वह श्री महादेवजी हमारा कल्याण करें ॥२॥

धराधरेन्द्रनंदिनीविलासबन्धुबन्धुर—
स्फुरद्दिगन्तसन्तति प्रमोदमानमानसे ।
कृपाकटाक्षधोरणीनिरुद्धदुर्धरापदि,
क्वचिद्दिगम्बरे मनो विनोदमेतु वस्तुनि॥३॥

गिरिराज हिमालय की कन्या पार्वती के क्रीड़ा के बन्धु और अत्यन्त रमणीय प्रकाशवान कृपा कटाक्षों से भक्तों की बड़ी-बड़ी आपत्तियों का नाश करने वाली वाणी से परे नग्न रूप श्री महादेवजी के प्रति मेरा मन आनन्द का लाभ करे ॥३॥

जटाभुजङ्गपिङ्गलस्फुरत्फणा मणि प्रभा—
कदम्बकुङ्कुमद्रवप्रलिप्तदिग्वधूमुखे ।

मदान्धसिन्धुरस्फुरत्त्वगुत्तरीयमेदुरे,
मनोविनोदमद्भुतंविभर्त्तु भूतभर्तरि ॥४॥

नृत्य करने के समय जब जटाओं में लपटे हुये फणीन्द्रों के फण तथा मणियों की देदीप्यमान पीत आभा फैलती है, जिससे दिशायें पीली हो जाती हैं, तब ऐसा लक्षित होता है मानो कामारि ने दिशाओं रूपी प्रमदाओं के मुख पर केशर मल दिया है, ऐसे और मदान्ध गजासुर के चर्म को ओढ़ने वाले अत्यन्त सुशोभित श्रीमहादेवजी के प्रति मेरा मन परम आनन्द को प्राप्त होवे ॥४॥

ललाटचत्वरज्वलद्धनञ्जयस्फुलिङ्गभा,
निपीतपञ्चसायकं नमन्निलिम्पनायकं ।
सुधामयूखलेखया विराजमानशेखरम्,
महाकपालिसम्पदेशिरोजटालमस्तुनः ॥५॥

जिन्होंने अपने भाल रूपी प्रांगण में धक्-धक् जलते हुये वह्नि के कण से कामदेव को भस्म कर दिया जिनको ब्रह्मादिक सुरों के अधिपति प्रणाम करते हैं, जिनका उन्नत ललाट चन्द्रमा की रश्मियों से सुशोभित रहता है और जिनकी जटाओं में कल्याणी श्री गङ्गा जी निवास करती हैं ऐसे कपाल-धारी तेजो मूर्ति सदाशिव हमें धर्म अर्थ काम और मोक्ष चारों पदार्थ देवें ॥५॥

सहस्रलोचनप्रभृत्यशेषलेखशेखर:
प्रसूनधूलिधोरणीविधूसराङ् घ्रिपीठभूः ।

भुजङ्गराजमालयानिबद्धजाटजूटकः,
श्रियैचिरायजायतञ्चकोरबन्धुशेखरः ॥६॥

इन्द्र इत्यादिक देवों के मुकुटों की पुष्पमालाओं से गिरे हुये पराग से धूसर चरण कमल वाले और जिनका जटाजूट नागराज वासुकी के लपेटों से बंध रहा है और जिनके विशाल मस्तक में राकापति विराजमान हैं ऐसे सदाशिव हमें धर्म, अर्थ काम और मोक्ष रूपी सम्पत्ति प्रदान करें ॥६॥

करालभालपट्टिकाधगद्धगद्धगज्वल-
द्धनञ्जयाहुतीकृतप्रचण्डपञ्चसायके ।
धराधरेन्द्रनन्दिनीकुचाग्रचित्रपत्रक-
प्रकल्पनैकशिल्पिनित्रिलोचनेरतिर्मम ॥७॥

जिन शिव शंकर ने अपने विकराल ललाट रूपी मैदान में प्रज्ज्वलित अग्नि में प्रबल कामदेव की आहुति दे दिया जो गिरिराज किशोरी पार्वती जी के स्तनों पर चित्रकारी करने में अत्यन्त कुशल हैं ऐसे त्रिनेत्र महादेवजी के विषय मेरी प्रीति होवे ॥७॥

नवीनमेघमण्डलीनिरुद्धदुर्धरस्फुर-
त्कुहूनिशीथिनीतमः प्रबन्ध बद्धकन्धरः ।
निलिम्पनिर्झरीधरस्तनोतु कृत्तिसुन्दरः,
कलानिधानबन्धुरः श्रियं जगद्धुरन्धरः ।८।

अमावश्या की अर्धरात्रि को स्वयं ही अन्धकार अधिक होता है, परन्तु यदि उस समय नवीन मेघ मण्डल घिर आवे तो और भी निबिड़अन्धकार हो जाता है। ऐसे घनघोर अन्धकार से भी अधिक काली है ग्रीवा जिसकी, ऐसे शिव जी हाथी के चर्म को ओढ़ने वाले हैं, त्रैलोक्य का भरण-पोषण करने वाले हैं और मस्तक पर चन्द्रमा धारण करने वाले हैं, ऐसे सदाशिव हमारे धन सम्पत्ति की वृद्धि करें ॥८॥

प्रफुल्ल–नीलपङ्कजप्रपञ्चकालिमप्रभा,
वलम्बिकण्ठकन्दलीरुचिप्रबद्धकन्धरम् ।
स्मरच्छिदंपुरच्छिदं भवच्छिदमखच्छिदं—
गजच्छिदान्धकच्छिदतमन्तकच्छिदंभजे ॥९॥

जिनके सुन्दर कण्ठ की परम सुन्दर शोभा खिले हुये नील कमल के चारों ओर फैली हुई नील वर्ण कान्ति का निरादर करती है, ऐसे कामदेव को भस्म करने वाले त्रपुरारि दक्ष के यज्ञ को नष्ट करने वाले, गजासुर का संहार करने वाले और अन्धकासुर का नाश करने वाले कालान्तक शिवजी को मैं भजता हूँ ॥९॥

अखर्वसर्वमंगलाकलाकदम्बमञ्जरी—
रसप्रवाहमाधुरीविजृम्भणामधुव्रतम् ।
स्मरान्तकं पुरान्तकं भवान्तकं मखान्तकं,
गजान्तकान्धकान्तकन्तमन्तकान्तकंभजे ।१०।

अनेक प्रकार के मंगलों को प्रचुरता से देने वाले चौंसठ कलारूपी कदम्ब के वृक्ष की मंजरी का रस पान करने वाले अर्थात् सर्वकला प्रवीण कामारि त्रिपुरारि भक्त भयहारी दक्षयज्ञ विध्वंसकारी गजासुर संहारी अन्धकासुर के हनन करने वाले और मृत्यु का भय दूर करने वाले श्री शिवाजी की मैं प्रार्थना करता हूँ ॥१०॥

जयत्यदभ्रविभ्रमस्फुरद्भुजङ्गमश्वसद्,
विनिर्गमक्रमस्फुरत्करालभालहव्यवाट् ।
धिमिन्धिमिधिमिन्ध्वनन्मृदङ्गतुङ्गमङ्गल-
ध्वनिक्रमप्रवर्तितप्रचण्डताण्डवः शिवः ॥११॥

नृत्य के समय अधिक वेग से घूमने पर मस्तक में लिपटे हुये सर्पों के निवास से और भी अधिक प्रज्वलित हुई है कराल भाल की अग्नि जिनकी और मृदंग की धिमि धिमि की मंगल ध्वनि की वृद्धि के अनुसार अपने ताण्डव नृत्य की गति को बढ़ाने वाले शिवजी महाराज की जय होवे ॥११॥

दृषद्विचित्रतल्पयोर्भुजङ्गमौक्तिकस्रजो-
गरिष्ठरत्नलोष्ठयोः सुहृद्विपक्षपक्षयोः ।
तृणारविन्दचक्षुषोः प्रजामहीमहेन्द्रयोः,
समप्रवृत्तिकः कदा सदाशिवंभजाम्यहम् ।१२।

वह कौन-सा शुभ समय होगा, जब मैं पत्थर और पुष्पों की शैय्या में सर्प और मोतियों की माला में, बहु-मूल्य रत्न

और मिट्टी के ढेलों में, शत्रु और मित्र में, तृण और नीलकमल के समान नेत्र वाली स्त्री में तथा प्रजा और चक्रवर्ती राजा में एक दृष्टि करके शिवजी का भजन करूँगा ॥१२॥

कदानिलिम्पनिर्झरीनिकुञ्जकोटरे वसन्,
विमुक्तदुर्मतिः सदा शिरस्थमञ्जलिंवहन् ।
विमुक्तलोललोचनो ललामभाललग्नकः,
शिवेतिमन्त्रमुच्चरन्सदासुखी भवाम्यहम् ।१३।

वह कौन सा कल्याणकारी समय होगा जिस समय मैं समस्त दुर्वासनाओं का परित्याग कर सुरसरि तट के कुञ्ज में निवास करके शिव पर अँजुली बाँधती हुई चंचल नेत्र वाली स्त्रियों में श्रेष्ठ जगज्जननी श्रीपार्वतीजी को भी भाग्यवश प्राप्त हुये अर्थात् दूसरों को दुर्लभ शिव, शिव का मन्त्र का उच्चारण करता हुआ परम आनन्द को प्राप्त होऊँगा ॥१३॥

निलिम्पनाथनागरीकदम्बमौलिमल्लिका,
निगुम्फनिर्भरक्षरन्मधूष्णिका मनोहरः ।
तनोतु नो मनोमुदं विनोदिनीमहर्निशं,
परःश्रियःपरम्पदन्तदङ्गजत्विषाञ्चयः ॥१४॥

इन्द्रपुरी की अप्सराओं के शिर से गिरी हुई निवारी के पुष्पों की मालाओं के पराग की उष्णता से उन्नत हुये पसीने से

सुशोभित परमशोभा का सर्वश्रेष्ठ स्थान और रात दिन आनन्द देने वाली सदाशिव के शरीर की कान्ति का जो समूह है वह हमारे मन के आनन्द की वृद्धि करे ॥१४॥

प्रचण्डवाडवानलप्रभाशुभप्रचारिणी,
महाष्टसिद्धिकामिनीजनावहूतजल्पना ।
विमुक्तवामलोचनाविवाहकालिकध्वनिः,
शिवेतिमन्त्रभूषणाजगज्जयायजायताम् ।१५।

भयानक बड़वानल के समान पापों को भस्म करने में प्रचंड अमङ्गलों का विनाश करनें वाले अष्टसिद्धियों के सहित, स्त्रियाँ गाती हैं गीत जिसमें और शिव शिव यह मन्त्र ही है आभूषण जिसका ऐसी स्वयंमुक्तभाव जगन्माता पार्वती जी के विवाह के समय की ध्वनि संसार को जय प्रदान करने वाली होवे ॥१५॥

पूजावसानसमये दशवक्त्रगीत, य शम्भुपूजनमिदं पठति प्रदोषे ।
तस्य स्थिरांरथगजेन्द्रतुरंगयुक्तां, लक्ष्मीसदैवसुमुखीप्रददातिशम्भुः॥

॥ इति श्री शिवताण्डव स्तोत्रम् सम्पूर्णम् ॥

हर प्रकार की पुस्तकें मिलने का पता—

श्री दुर्गा पुस्तक भण्डार,

५२७ए/२, कक्कड़नगर, (दरियाबाद), इलाहाबाद ।

या ब्रांच—जानसेन गंज, इलाहाबाद ।